यह नियमसार, मोक्ष के मार्ग का अधिकार है। जीव अधिकार चलता है। ९ वीं गाथा। क्या कहते हैं भगवान सर्वज्ञ परमात्मा? पहली बात आ गयी। अपने केवलज्ञान आदि ऋद्धि से सहित हैं। परमात्मा सर्वज्ञदेव केवलज्ञान, अनन्त आनन्द आदि वैभव से समृद्ध हैं। उनके मुख से निकली हुई वाणी को आगम कहा जाता है। आगम उसे कहते हैं। उस आगम में छह तत्त्व अथवा छह द्रव्य की व्याख्या है। यहाँ तत्त्वार्थ कहो या द्रव्य कहो, यह बात यहाँ चली है। उसमें जीव की व्याख्या चलती है।

भगवान ने जीव किसे कहा? सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा, वाणी-दिव्यध्वनि द्वारा जीव का स्वरूप कैसा कहा? नय से, थोड़ा सूक्ष्म विषय है। पहले यह आया कि **दस प्राणों से (संसारदशा में) जो जीता है, जियेगा और पूर्व काल में जीता था, वह 'जीव' है...** शुरुआत की ९वीं गाथा। संग्रहनय से अथवा संग्रह अर्थात् समुच्चय प्रत्येक जीव

गिनने में आया है। तो जो जीव अनादि से दस प्राण—पाँच इन्द्रिय, श्वास, आयु, मन-वचन और काया, यह निमित्त से, व्यवहार से **जीता है, जियेगा और पूर्व काल में जीता था,...** उसे व्यवहार से, संग्रहनय से जीव कहा गया है। जानने की बात इतनी है।

निश्चय से भावप्राण धारण करने के कारण 'जीव' है। कारण जीव है। क्या कहते हैं? वास्तव में तो यह आत्मा अपने ज्ञान, दर्शन, आनन्द और सत्ता — ऐसे त्रिकाली भावप्राण धारण करने से, भगवान ने आगम में उसे जीव कहा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें तो कुछ स्पष्टीकरण दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्टीकरण यह है कि जो आत्मा है, आत्मा। यहाँ जीव शब्द लिया है। जीव की व्याख्या है न, इसलिए (जीव शब्द लिया है)। वह जीव। छहढाला में जीव की व्याख्या थी, परन्तु वह दूसरे प्रकार से (थी) कि अन्तरात्मा, बहिरात्मा और परमात्मा—ऐसे जीव के तीन प्रकार हैं। छहढाला में ऐसा लिया था। जीव के तीन प्रकार – ऐसा लिया था। बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा – यह जीव के तीन प्रकार। यहाँ जीव के दूसरी रीति से प्रकार लेते हैं।

मुमुक्षु : जीव तो वह का वह न, या दूसरा?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव तो वह का वही है। जीव दूसरा है? तत्त्वार्थसूत्र में जीव की दूसरी व्याख्या (कही है)। जीव उसे कहते हैं, कर्मचेतना, कर्मफलचेतना, शुद्धभावचेतना धारण करे, वह जीव। वहाँ ऐसा लिया है; यहाँ ऐसा लिया है।

मुमुक्षु : द्रव्यसंग्रह में भी ऐसा लिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, द्रव्यसंग्रह में भी यह है। समझ में आया? यह तो उमास्वामी का तत्त्वार्थसूत्र मूल सूत्र है न? उसकी टीका में ऐसा लिया है।

यह समझने की चीज़ है। मोक्षमार्ग है न? तो मोक्षमार्ग निश्चय से किसके आश्रय से प्रगट होता है? यह सिद्ध करने के लिये यहाँ जीव की व्याख्या नय से स्पष्ट की है। तो कहते हैं कि अनादि काल से ये जड़ प्राण हैं, पाँच इन्द्रियाँ आदि से जीवे, वह तो अशुद्धरूप से जीता है। यह तो व्यवहार संग्रहनय से सभी जीवों की व्याख्या साधारण रीति से की है। सब संसारी जीव। परन्तु भाव (प्राण)? यह आत्मा है, इसमें ज्ञान है, आनन्द है, दर्शन है

और वीर्य है और सत्ता है। ऐसे भावशक्तिरूपी प्राण को धारण करनेवाले को जीव कहते हैं। वह यथार्थरूप से जीव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : राग को धारण करनेवाला जीव नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग-बाग को धारण करनेवाला जीव नहीं। वह तो अशुद्ध से बात करे, तब बात करे। जीव का वास्तविक चैतन्यतत्त्व, सम्यग्दर्शन का विषय। देखो! यह जीव, आत्मा - वह तो जानन-देखन, आनन्द और सत्ता—ऐसे भावशक्तिरूप प्राण से जीता है, उसे जीव कहा जाता है। अर्थात् जिसके आत्मा में ज्ञान-दर्शन-आनन्द-सत्ता है, ऐसी दृष्टि करके, भावप्राण को धारण करनेवाला जीव है—ऐसी दृष्टि हो, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। सेठी!

आत्मा में, भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा कि वस्तु आत्मा और उसकी शक्ति / गुण—अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख-वह ध्रुवभाव, ध्रुव शक्ति है। उस ध्रुव को धारण करनेवाले जीव को जीव कहते हैं। ऐसा जीव माननेवाला जीव, उसकी दृष्टि, पुण्य-पाप, निमित्त से हटकर, अल्पज्ञ पर्याय से भी दृष्टि हटकर अपने अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, सुख आदि धारक जीव है; उस पर दृष्टि पड़ने से, वह जीव भावप्राण से जीता है, ऐसा अनुभव में - प्रतीति में आता है। भारी सूक्ष्म! दिगम्बर सन्तों की व्याख्या ही अलौकिक बात है। अनादि तीर्थंकर सर्वज्ञदेव परमेश्वर ने कही, वह वाणी है। देखो! जीव के ये भेद हैं। तुमने कभी सुने हैं? पद्मचन्दजी! है? नहीं? ३२ सूत्र, ४५ (सूत्र) में कुछ है नहीं।

यह तो भगवान की सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी है। इस वाणी को आगम कहते हैं। इस आगम में छह द्रव्य और छह तत्त्व कहे गये हैं। यहाँ द्रव्य और तत्त्व को एक कहा गया है। उनमें जीवतत्त्व या जीवद्रव्य, वास्तविक जीवद्रव्य, तत्त्व। भावप्राण से जीवे, वह जीव। उसका अर्थ क्या? जिसकी दृष्टि अपने त्रिकाली गुण के धारक आत्मा पर पड़ती है, तो भावप्राण से जीता है—ऐसे उसकी प्रतीति और अनुभव में आया। भाई! ऐसे जीता है - ऐसा नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : अन्तर में परिणमन होना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर। समझ में आया? आत्मा... जीव कहो या आत्मा कहो।

अभी यहाँ जीव शब्द है। यह तो छहढाला में जीव की व्याख्या करते हुए बहिरात्मा, अन्तरात्मा भेद किये हैं। समझे न ? परन्तु वह जीव की व्याख्या करते हुए अन्तरात्मा और ऐसे भेद किये परन्तु यहाँ जीव कहो या आत्मा कहो। जीव जड़ प्राण से जीता है, यह तो साधारण बात है, यह तो अनादि से है, परन्तु अन्तर में वस्तु भगवान आत्मा त्रिकाली अविनाशी है और उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अविनाशी शक्ति है, तो उस शक्ति से टिकता है, जीता है, उसे यहाँ जीव कहा जाता है परन्तु जीव ऐसे टिकता है, ऐसा अनुभव किसे होता है ? धारणा से लक्ष्य में लेने से नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहा..हा..!

भगवान आत्मा अन्तर में ज्ञान, दर्शन, आनन्द अनन्त बेहद शक्ति, प्राण (धारण कर रखे हैं)। उस प्राण को धारण करनेवाला—प्राणी—आत्मा। ऐसा प्राणी जो आत्मा, ऐसे प्राण को धारण करनेवाला है, ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि हो, तब दृष्टि में और ज्ञान में भास होता है कि यह जीव तो तीन काल से अपने निजगुण से ही टिका हुआ है। समझ में आया ? कहो, जेठाभाई ! यह बात वहाँ थी ? तुमने कितने वर्ष व्यतीत किये ?

मुमुक्षु : ज्ञान, दर्शन, चारित्र वह जीव, बस।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह और अलग। यह तो प्राणवान है न ? भावप्राण, भावप्राणवान आत्मा; द्रव्यप्राणवान नहीं, अशुद्ध भी नहीं। आहा..हा..! वस्तु-आत्मा अन्दर जो अपरिमित ज्ञान, आनन्द, दर्शन आदि का धारक है, तो इन अनन्त ज्ञान आदि धारण करनेवाला-प्राण को धारण करनेवाला प्राणी, अन्तर में दृष्टि में आवे, तब वह जीता है, ऐसा इसे भान होता है। समझ में आया ? मेरा भगवान तो अनन्त आनन्द आदि भावप्राण से (टिकनेवाला) वह प्राणी है। किसी द्रव्यप्राण से प्राणी नहीं राग-द्वेष है, वह प्राणी आत्मा नहीं। समझ में आया ? मणिकान्त गये ?

मुमुक्षु : नहीं, नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्यों दिखायी नहीं दिये ? रात्रि को याद किया था। कुछ आया था। प्रदेश, पर्याय के प्रदेश, पर्याय के प्रदेश में आया था।

मुमुक्षु : चिद्विलास।

पूज्य गुरुदेवश्री : चिद्विलास में। पर्याय के प्रदेश वह पर्याय। उस पर्याय का कारण पर्याय के प्रदेश। द्रव्य-गुण के प्रदेश नहीं। बहुत सूक्ष्म। ऐसा सूक्ष्म जीव। समझ

में आया ? दिगम्बर सन्त और दिगम्बर मार्ग में ही यह मार्ग है। अन्यत्र यह मार्ग नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वर की परम्परा से चला आया मार्ग है। समझ में आया ?

ऐसा अन्तर आत्मा... कहते हैं कि वह आत्मा भावप्राण से जीता है, ऐसा निर्णय किसे होता है ? वह तो जीता है, है इतना हुआ। परन्तु उस ज्ञान आनन्द को धारण करनेवाला, अनन्त बेहद आनन्द को धारण करनेवाला आत्मा, वह प्राण से जीता है, टिकता है, रहता है। उसका निभाव अपने प्राण से है; पर से निभाव नहीं है। जब सम्यग्दर्शन में अन्तर्मुख होकर जीव ऐसा है, ऐसी अन्तर्मुखदृष्टि / मान्यता हुई तो उस सम्यग्दर्शन में ज्ञान साथ में है। ज्ञान जानता है कि मेरा आत्मा इन अनन्त गुणों से टिक रहा है। उसे किसी राग की या पार की आवश्यकता नहीं है। ऐसा दृष्टि में अनुभव हो तो भगवान उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया ? भाई ! यह तो हिन्दी चलती है। तुम्हारी (भाषा) मराठी है। यह हिन्दी चलती है। पुस्तक तो हिन्दी दी है न ? समझ में आया ? मार्ग सूक्ष्म है, भगवान ! आहा..हा.. ! यहाँ तो वे कहते हैं कि भाई ! देव-देवला को मानो, ऐसा बेचारे को कहा होगा। वहाँ जाकर पद्मावती को गाली दी होगी कि तुम्हारे बाप सब मिथ्यात्वी हैं। अरे ! भगवान ! क्या हुआ जैन में ?

त्रिलोकनाथ चैतन्यदेव, अपना परमेश्वर; वीतराग तो परदेव-व्यवहारदेव है। दूसरे देव, क्षेत्रपाल, पद्मावती धूलधाणी उन्हें माननेवाला तो मिथ्यादृष्टि है। ऐई ! पण्डितजी ! कौन जाने ऐसा हो गया है। यहाँ तो देवाधिदेव आत्मा, देवाधिदेव तीर्थंकर अपनी अपेक्षा से तो परदेव है। उन्हें मानना, वह भी विकल्प और राग है। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा वस्तुरूप से अनादि-अनन्त है। उसका टिकना, उसका अनादि-अनन्त, ज्ञान-दर्शनभाव, ध्रुव प्राण से वह जीता है। ऐसा दृष्टि में लेना और अपने ज्ञान की पर्याय में उसे ज्ञेय बनाकर, वह भावप्राण से टिकता है, ऐसा अनुभव में आना, उसका नाम उसने जीव माना, उसे जीव की श्रद्धा हुई, यह जीव का अनुभव हुआ, जीव ऐसा है—ऐसी प्रतीति हुई तो सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा.. ! श्रद्धा की ऐसी बात है, भगवान ! भाई ? समझ में आया ? जीव के ५६३ भेद रट डाले। शुकनचन्दजी ! उसमें है न ५६३ भेद ? यह तो जड़ मिट्टी है वह तो अशुद्ध भावप्राण से जीता है, वह भी यथार्थ जीव नहीं है। आहा..हा.. ! पाँच इन्द्रिय खण्ड-खण्ड से जीता है, मन, वचन, काया, वीर्य, वीर्य, हों ! अन्दर। उससे जीता है, वह भी वास्तविक जीव नहीं है। आहा..हा.. !

वास्तविक भावप्राण से जीता है। अनन्त-अनन्त आनन्द आदि शक्ति से शक्तिवान रहा है। ऐसी शक्ति से शक्तिवान रहा है, ऐसा पर्याय में भान हो तब भावप्राण से आत्मा जीता है, ऐसा इसे अनुभव में भरोसा, प्रतीति होती है। बात पूरी गुम हो गयी है। सब बाहर की (बातें रही गयी हैं), यह दया पालो, यह करो, वह करो। परन्तु वस्तु क्या चीज़ है, उसका पता लिये बिना आत्मा की जहाँ प्रतीति नहीं, तो कहाँ स्थिर होना, इसकी तो खबर नहीं। समझ में आया? भावप्राण स्थिर है और उस स्थिर से भगवान त्रिकाल स्थिर रहता है, ऐसी सम्यक्पर्याय में अनुभव होकर भावप्राण से जीता है, ऐसी प्रतीति साक्षात् अपनी पर्याय में आती है, तब वह प्राण से जीता है, ऐसी उसकी इसे स्वीकृति है। समझ में आया?

अब जीव किसे कहना? यहाँ भाव यथार्थ जीव (किसे कहना)? जीव, जीव तो सब कहते हैं। पूरी दुनिया कहती है। नास्तिक को यह जीव है, अजीव है, परन्तु ये सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के ज्ञान में, अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु जो आये, उनमें वह आत्मा भावप्राण से जीता है, ऐसा ज्ञान में आया। आहा..हा..! उनके ज्ञान में आया, वैसा अपने ज्ञान में जब आवे, तब इसके सच्चे भावप्राण से जीता है, ऐसा अनुभव हुआ। समझ में आया?

निश्चय से भावप्राण धारण करने के कारण 'जीव' है। व्यवहार से द्रव्यप्राण धारण करने के कारण... निमित्त में दस प्राण हैं, उनका ज्ञान (कराया)। आत्मा भावप्राण से जीता है, आत्मा में ऐसा अनुभव हुआ, उसे दस प्राण निमित्तरूप है, उनका ज्ञान होता है। बस। तब उसका ज्ञान होता है। समझ में आया? यह तो शान्ति का मार्ग है, भाई! आहा..हा..! अभी तो जीव किसे मानना, इसकी बात है। पद्मप्रभमलधारिदेव लगभग ९०० वर्ष पहले दिगम्बर मुनि थे। उनकी यह टीका है। नियमसार, कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक (गाथायें) हैं, उनकी यह टीका है। दिगम्बर मुनि, जिनके मुख में से आगम झरता है, ऐसा अन्दर लिखते हैं। आहा..हा..! वह वाणी जो कहती है, वही आगम है। यह टीका ही आगम है, जाओ! समझ में आया? कहा न, दो-तीन बार कहा।

आत्मा जीव है, उसे जीव की प्रतीति कब होती है? कि जीव में आनन्द, ज्ञान-दर्शन आदि प्राण से वह आत्मा टिक रहा है। उसे किसी की आवश्यकता नहीं है। आत्मा के ऐसे भावप्राण से आत्मा जीता है, वैसी पर्याय में उस ओर की दृष्टि हो, उसे ज्ञेय बनाकर ज्ञान हो, तब सम्यक्ज्ञान में प्रतीति हुई, भास हुआ कि यह भावप्राण से त्रिकाल जीनेवाला

मैं जीव हूँ। आहा..हा..! समझ में आया? अरे! जीव किसे कहते हैं? ऐसे ज्ञानी को, भावप्राण से जीता है, ऐसा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान में अनुभव आया, तो उसे निमित्तरूप से द्रव्यप्राण हैं, उनका ज्ञान होता है, बस। अज्ञानी को तो दस प्राण से जीता है, ऐसा ज्ञान भी नहीं है। समझ में आया? ओहो..हो..!

सन्तों ने तो मार्ग सरल कर दिया है। ऐसी सादी भाषा में... ओहो..हो..! गजब बात है। दिगम्बर मुनि भावलिंगी सन्त थे। मात्र नग्न, वस्त्र छोड़े वह कहीं साधु-वाधु है ही नहीं। समझ में आया? यह तो अरिहन्त भगवान को मानना, वह भी कहते हैं कि शुभभाव है और परद्रव्य में हमारी बुद्धि जाती है, वह व्यभिचार है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! भाई! सन्त, दिगम्बर मुनि ऐसा कहते हैं कि हमारी बुद्धि परद्रव्य में जाये तो वह बुद्धि व्यभिचारी है। आहा..हा..! पद्मनन्दि में आया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में भी है। पद्मनन्दिपंचविंशति में है। पद्मनन्दि आचार्य दिगम्बर सन्त, आत्मध्यानी, ज्ञानी, अन्तर अनुभव (सहित) चारित्रदशा (थी)। वे कहते हैं कि अरे! शास्त्र में भी बुद्धि जाये, वह बुद्धि व्यभिचारी है। गजब बात है। ऐई! आहा..हा..! पद्मनन्दी (पंचविंशति) नहीं? उसमें है। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। मोक्षमार्गप्रकाशक में आधार दिया है। किसमें? सातवें (अधिकार) में न? यहाँ है, बीच में कहीं है, पीछे होगा। पद्मनन्दी में ऐसा कहा, ऐसा करके प्रश्न किया है। फिर कहा भाई! तेरी बात तो सत्य है। यदि अन्यत्र बुद्धि जाये, उसकी अपेक्षा वहाँ जाये... ऐसा कहते हैं। ज्ञानगोष्ठी। बड़ा समुद्र हो उसमें से... पद्मनन्दीपंचविंशति, प्रश्न उसने (शिष्य ने) पूछा था। यह व्यवहाराभास में होगा, हों! ऐसा कहा है न? क्या कहते हैं? समझ में आया?

आत्मा जो है यह आत्मा। अन्तर में आत्मा की शक्ति में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान आदि पड़े हैं। वह अनन्त ज्ञान-दर्शन आनन्द के प्राण को धारण करनेवाला वह आत्मा है। अशुद्ध भावप्राण वे जड़ के हैं, यह नहीं, वह तो असद्भूत। लो आया, देखो! पद्मनन्दीपंचविंशति में ऐसा कहा, देखो! इसमें सामनेवाले का प्रश्न था कि बुद्धि आत्मस्वरूप में से निकलकर बाहर शास्त्र में विचरण करे, वह तो व्यभिचारिणी है। शास्त्र भी पर है न, वीतरागदेव भी पर है, तो उस ओर बुद्धि जाये तो राग होता है, व्यभिचार होता है। पद्मनन्दीपंचविंशति का अधिकार है।

मुमुक्षु : .....बहुत झगड़ा हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : झगड़ा हो तो क्या करे ? ऐसी बात है। मार्ग तो ऐसा है। यह तो शुरुआत में है। उस प्रमत्त-अप्रमत्त के बाद तुरन्त। थोड़ा-बहुत अभ्यास करना, ऐसा जहाँ आया न, उसमें चला कि अभ्यास करना, वह तो शास्त्र में बुद्धि लगाना, उसे व्यभिचार कहा है। भाई! बात है तो ऐसी, परन्तु अशुभराग में जाये, उसकी अपेक्षा शास्त्र का अभ्यास करना, वह शुभभाव है। आहा..हा..! समझ में आया ? यह तो तर्क में आया। २०७ वें पृष्ठ पर है। पहले शुरुआत प्रमत्त-अप्रमत्त के बाद तुरन्त। समझ में आया ?

शास्त्र को मानना, सच्चे अरिहन्त देव को मानना, वह भी विकल्प है, राग है, परद्रव्य है। यह तो कहे देव-गुरु को मानना, वह समकित है। ऐई! शुकनचन्दजी! सुना है या नहीं ? सब मिथ्या है। वह व्यवहार समकित विकल्प है। किसे ? जिसे अपने चैतन्य भावप्राण को धारण करनेवाला भगवान पूर्णानन्दस्वरूप मैं हूँ, ऐसा अनुभव हुआ, सम्यक्निश्चय हुआ, उसे व्यवहार समकित, सच्चे देव ऐसे होते हैं, ऐसी मान्यता के भाव को व्यवहार समकित कहते हैं। वह विकल्प है, राग है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : दूसरों के लिये नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी को व्यवहार कैसा ? समझ में आया ? मार्ग कुछ दूसरा है, भाई! अनादिकाल से चौरासी में चार गति में भटकता है, उसका नाश करने का उपाय अलौकिक है। वह कहीं साधारण उपाय नहीं है। अनन्त बार अनन्त बार दूसरा किया परन्तु यह कभी नहीं किया।

भगवान आत्मा अन्दर सच्चिदानन्दस्वरूप है। अतीन्द्रिय ज्ञान-आनन्द का सागर, समुद्र स्वभाव है। ऐसे स्वभाव से मैं स्वभाववान जीता हूँ। आहा..हा..! इसे मैं जीव मानता हूँ। ऐसी मान्यता अन्तर्मुख होकर हो, उसे द्रव्य-भावप्राण से जीनेवाला मैं-ऐसी प्रतीति हुई। पश्चात् अभी दस प्राण बाकी हैं, उनका ज्ञान करता है कि थोड़ा बाकी है। बस, वे छूट जायेंगे। ऐसी बात है। गजब। अब दूसरी बात। व्यवहार यहाँ तक तो परसों के दिन आया था।

अब, **शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से...** देखो! आहा..हा..! भगवान आत्मा अनन्त केवलज्ञान आदि का तो पिण्ड है परन्तु जब वह अपने शुद्धस्वभाव के आश्रय से, जब केवलज्ञान, केवलदर्शन, परमात्मपद पर्याय में प्राप्त होता है, वह क्या है - यह बात बताते

हैं। केवलज्ञान आदि शुद्ध सद्भूतव्यवहार अर्थात् ? केवलज्ञान होना, अनन्त आनन्द होना, अरिहन्त पद होना, वह पर्याय है, वह कार्य है। वह कार्य शुद्ध है और सद्भूत अर्थात् अस्ति रखता है। व्यवहार अर्थात् त्रिकाल की अपेक्षा से वह अंश है। अरे रे! इसमें कितना याद रखना।

शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से... यह व्याख्या चलती है। **केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का...** गुणों अर्थात् पर्याय। भगवान अरिहन्त परमात्मा को अनन्त केवलज्ञान, अनन्त आनन्द जो प्रगट हुए, उन्हें यहाँ गुण कहा गया है। वे हैं तो पर्याय। उन **केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने के कारण...** कौन आधार ? **'कार्यशुद्ध जीव'...** यह समुच्चय सामान्य जो कार्य हुआ, उस गुण की पर्याय का वह आधार है। क्या कहा ? ऐई.. चेतनजी! देखो आधार आया। पर्याय का आधार पर्याय। आहा..हा..!

भगवान आत्मा अन्तर में तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, आनन्द की शक्ति से तो भरपूर है, परन्तु उसका आश्रय करके, अवलम्बन लेकर, सन्मुख होकर, स्वभावसन्मुख होकर शक्ति में से व्यक्तता / प्रगट दशा हुई, अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, आनन्द आदि (प्रगट हुए), उन्हें यहाँ शुद्ध कहा गया है क्योंकि पर्याय निर्मल है। सद्भूत कहा गया है, क्योंकि वे आत्मा में हैं और व्यवहार कहा गया है, वह त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से केवलज्ञान आदि अंश है। अंश है तो व्यवहार कहा गया है। आहा..हा..!

शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने के कारण 'कार्यशुद्ध जीव' है। यह केवलज्ञान आदि परमात्मा को प्रगट हुआ, उन्हें कार्यशुद्ध जीव कहते हैं। कार्यशुद्ध जीव। केवलज्ञान आदि, वह पर्याय है। पर्याय, वह कार्य हुआ, तो कार्यशुद्ध जीव कहने में आया है। आहा..हा..! इसकी प्रतीति किसे होती है कि यह कार्यशुद्ध जीव है। वह कहते हैं, देखो! बाद में कहेंगे। जो कारण जीव आत्मा त्रिकाली ध्रुव द्रव्य है। एक समय की उत्पाद-व्यय की पर्यायरहित चीज़, त्रिकाली ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, उस नित्यस्वरूप आत्मा के अंश को यहाँ कारणजीव कहते हैं। उस कारणजीव का आश्रय लेकर, अन्तर्मुख का अवलम्बन लेकर जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, उसे ऐसी प्रतीति होती है कि इस कारण में से पूर्ण कार्यपरमात्मा हुए हैं। ऐसे कार्यपरमात्मा हुए, उसकी प्रतीति उसे होती है। आहा..हा..! गजब बात।

अब यह सम्यग्दर्शन क्या ? उसका निर्णय करना, प्रतीति करना, विचार करना, मनन करने का तो ठिकाना नहीं। ले लो व्रत और तप करो और स्थिर रह सकता नहीं, इसलिए व्रत आदरो। तुझे किसके व्रत ? अज्ञानी को व्रत कैसे ? आहा..हा.. ! समझ में आया ? यह आत्मा... वह तो मिट्टी-धूल है, जड़ है और अन्दर में पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, वह तो राग है। राग को जाननेवाली पर्याय, वह एक अंश है परन्तु यहाँ तो पूर्ण अंश जिन्हें प्रगट हुआ है; केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द प्रगट हुए, उस पर्याय को कार्यजीव कहते हैं। वह अनन्त केवलज्ञान आदि पर्याय का आधार, वह कार्यजीव पर्याय है। पर्याय का आधार पर्याय है। यहाँ तो भेद का आधार अभेद है, ऐसा बताना है। समझ में आया ? पण्डितजी ! कभी पढ़ा था या नहीं यह ? आहा..हा.. ! अमृत भरा है अमृत।

कहते हैं कि वह '**कार्यशुद्ध जीव**' **है।** यह अपने परसों आ गया है। नीचे आ गया न ? ***प्रत्येक जीव, शक्ति-अपेक्षा से शुद्ध है,...*** नीचे नोट है। प्रत्येक जीव शक्ति, स्वभाव, सत्व, गुण, भाव इस अपेक्षा से शुद्ध ही है। ***सहजज्ञानादिकसहित है;...*** भगवान आत्मा स्वाभाविक ज्ञान, स्वाभाविक आनन्द आदिसहित अनादि से है। ***इसलिए प्रत्येक जीव, 'कारणशुद्ध जीव' है।*** प्रत्येक जीव को कारणशुद्ध जीव कहा जाता है। क्यों ? कि आत्मा अनादि से अपने अनन्त ज्ञान-दर्शन शुद्धशक्ति को धारण करनेवाला है, इस कारण से उसे कारणजीव कहने में आता है। अरे रे ! यह धर्म देशना कैसी ऐसी ? वे कहें छह काय के जीव पालना,... जीवया-बहोरविया, तस्स मिच्छामि दुक्कडम्... आहा..हा.. ! ऐकेंद्रिया, द्वेन्द्रिया, त्रिइन्द्रिया, चौइन्द्रिय,... कहाँ है ? तू सुन तो सही। यह जीवत्व ऐसे ज्ञान-दर्शन का धारक भगवान, उसे नहीं मानना और राग तथा पुण्य को अपना मानना, वह जीवया, बहोरविया है। अपने जीव का उसकी श्रद्धा में नाश किया है। यह उसका मिच्छामि दुक्कडम् कब होता है ? अपना आत्मा कारणशुद्ध जीव त्रिकाल है, उसका आश्रय करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ तो पहले नाश होता था तो उसे जिलाया कि ओहो.. ! मैं तो ऐसा जीव हूँ। सेठी ! देखो !

यहाँ कहते हैं, देखो ! कारणजीव, ***जो कारणशुद्ध जीव को भाता है...*** द्रव्यस्वभाव अनन्त आनन्दमय प्रभु आत्मा है, उसकी जो भावना करता है। अन्तर्मुख में, अन्तर स्वभाव में सन्मुख होकर, अन्तर एकाग्र होता है, उसका ही आश्रय करता है। भगवान

आत्मा... प्रगट अपेक्षा से शुद्ध केवलज्ञानादिसहित होता है, उसे केवलज्ञान प्रगट होता है। त्रिकाली भगवान आत्मा का आश्रय करे, उसे केवलज्ञान होता है। शक्तिरूप से है और व्यक्तरूप से प्रगट होता है। आहा..हा..! वह ***'कार्यशुद्ध जीव' होता है।*** उसका नाम कार्यशुद्ध जीव है।

शक्ति में से व्यक्ति होती है;... यह कहा था। छोटी पीपर होती है न? उसमें चौंसठ पहरी चरपराहट पड़ी है। छोटी पीपर में चरपराहट है। हमारे काठियावाड़ में तीखाश कहते हैं। चौंसठ पहरी तीखाश। तीखा रस। हिन्दी में चरपराहट, तो चौसठ पहरी चरपराहट पड़ी है तो प्रगट होती है। पड़ी है, वह शक्ति; उसमें से प्रगट होती है, वह व्यक्ति। इसी प्रकार भगवान आत्मा में अनन्त ज्ञान-दर्शन शक्तिरूप है, वह कारणशक्ति जीव और उसका आश्रय करके केवलज्ञान आदि हुआ, वह कार्यशुद्ध जीव है। कहो, समझ में आया?

ऐसा होने से शक्तिरूप शुद्धतावाले जीव को... शक्तिरूप शुद्धतावाले अनादि जीव को ***कारणशुद्ध जीव कहा जाता है...*** पण्डितजी ने बहुत अच्छा स्पष्टीकरण किया है। ***और व्यक्त शुद्धतावाले जीव को...*** देखो! प्रगट शुद्धतावाले जीव को, केवलज्ञान आदि हुआ उसे ***कार्यशुद्ध जीव कहा जाता है। (कारणशुद्ध, अर्थात् कारण-अपेक्षा से शुद्ध, अर्थात् शक्ति -अपेक्षा से शुद्ध। कार्यशुद्ध, अर्थात् कार्य-अपेक्षा से शुद्ध, अर्थात् व्यक्ति-अपेक्षा से शुद्ध।)*** अरे! ऐसा गजब भाई यह! घर में हो नहीं। धर्म का सुनने जाये, उसमें यह बात आवे नहीं। एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया करो। मिच्छामि दुक्कडम्... जाओ। जीवया-बहरोविया... परन्तु काया क्या? ठाणेणं क्या? आत्मा क्या? आत्मा में स्थिरता, उसके सन्मुख होना, ये दोनों चीज़ क्या है? और वह चीज़ कहाँ से प्रगट होती है? धर्मध्यान निर्मल दशा का कारण कौन? इसकी खबर नहीं और हमें धर्म हो गया। कहाँ से हुआ? पोपटभाई! यही किया है? आहा..हा..! हम भी वहाँ पालेज में ऐसा करते थे, हों! दुकान से निवृत्त होकर पर्यूषण में प्रतिक्रमण करते, सब इकट्ठे होते, मैं प्रतिक्रमण कराता। सब इकट्ठे होते। खबर नहीं होती कुछ।

मुमुक्षु : प्रौषध करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रौषध करते-उपवास करते। आठ दिन में चार उपवास। संसार में, गृहस्थाश्रम में दुकान पर चार अपवास करते और शाम को सब इकट्ठे हों, तब प्रतिक्रमण

करते। फिर प्रीतिभोज करते। स्थानकवासी के बारह-तेरह घर थे तो सब एक-एक बार सबको जीमावे, संघ किया कहलावे। पालेज में बारह-तेरह घर थे।

मुमुक्षु : स्वामी वात्सल्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वामी वात्सल्य। हो गया धर्म, लो! धूल में भी धर्म नहीं। आहा..हा..!

कहते हैं कि शक्ति-अपेक्षा से जो शुद्ध आत्मा त्रिकाल है, उसे कारणशुद्ध जीव कहने में आता है और उसका आश्रय लेकर ध्यान करके, शक्ति में से व्यक्तता प्रगट हुई, वह व्यक्त शुद्धतावाले जीव को कार्यशुद्ध जीव कहने में आता है। आहा..हा..! उसकी प्रतीति कब होती है? कि कारणजीव भगवान शक्ति आनन्दकन्द है, उसका अवलम्बन लेने से सम्यग्दर्शन होता है, तब कारणजीव की प्रतीति और उसका पूर्ण कार्य केवलज्ञान ऐसा है, उसकी प्रतीति उसे होती है। पण्डितजी! गजब बात, भाई! फिर कहे न, इन सोनगढ़वालों ने नया पंथ निकाला है। नया पंथ या यहाँ जो है वह है। नया पंथ निकाला है? किसी के साथ मेल नहीं। वैसे तो अनादि से यही है।

मुमुक्षु : उसे खबर नहीं हो, इसलिए नया लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं है बेचारों को। नया लगता है। आहा..हा..!

अब यहाँ तक अपने आये, कार्यशुद्ध जीव है। **अशुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से मतिज्ञानादि विभावगुणों का आधार होने के कारण 'अशुद्धजीव' है।** अशुद्धजीव पर्याय में। वह पर्याय अशुद्धजीव जो है, उसका अशुद्ध। अशुद्ध है न? मतिज्ञान आदि अशुद्ध है। केवलज्ञान नहीं, अपूर्ण है और जिसमें अभी कर्म के निमित्त की अपेक्षा रही है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान-सम्यग्ज्ञान, वह भी अशुद्ध है। सम्यग्ज्ञान है परन्तु चार विभाव है। अपूर्ण है न? आहा..हा..! समझ में आया? अशुद्ध है। क्या कहते हैं? देखो!

सम्यग्ज्ञान में मति-श्रुतज्ञान द्रव्य के आश्रय से हुआ। सम्यग्ज्ञान, शास्त्र से भी नहीं हुआ। अपना मति-श्रुतज्ञान अपने त्रिकाली ज्ञायकभाव के आश्रय से हुआ परन्तु वह अल्पज्ञान है। इस अपेक्षा से, कर्म की अपेक्षा का निमित्त क्षयोपशम है तो उसे अशुद्ध कहते हैं। मति को, श्रुत को, अवधि को, मन:पर्यय को। वह मतिज्ञान आदि अशुद्ध सद्भूत।

परन्तु है अपनी पर्याय में अस्ति। चार ज्ञान भी है तो सद्भूत और व्यवहार अंश है तो व्यवहार (कहा)। चार ज्ञान भी अंश है तो व्यवहार। केवलज्ञान भी अंश है तो व्यवहार। फिर यह चार ज्ञान तो अंश है। आहा..हा..! यह तो अभी दया, दान के विकल्प को व्यवहार (कहे) और वह व्यवहार निश्चय का कारण... भारी गप्प मारते हैं। जेठाभाई!

मुमुक्षु : विपरीत रास्ते।

पूज्य गुरुदेवश्री : विपरीत रास्ते। क्या करे? बात ही ख्याल में आयी नहीं। उसे बेचारे को कुछ दु:खी तो होना नहीं है परन्तु इस वस्तु का मार्ग ही ख्याल में नहीं है। ख्याल में नहीं है। किसी को दु:खी होकर भटकने का भाव तो कहीं होगा? परन्तु भान नहीं है, इसलिए दु:खी होकर भटकता है। दु:खी होकर भटकता है। आहा..हा..!

अभी एक टीका देखी। वह षट्पाहुड़ की है न? उसकी दूसरी गाथा में, 'शासनदेव को न पूज्य, न मानना' वह सब मिथ्यात्वी है, ऐसा टीका में लिखा है। (भट्टारक) श्रुतसागर। शासनदेव को न माने, वह मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : श्रुतसागर ने स्वयं लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं लिखा है। वह स्वयं ठिकाने बिना का। क्या हो? ऐसी टीका करनेवाले। माने कौन?

यहाँ तो सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा परद्रव्य हैं। उनकी मान्यता भी विकल्प है, परन्तु जब तक पूर्ण वीतरागता आत्मा को न हो, तब अपने द्रव्य के आश्रय से निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो, तब ऐसे विकल्प आये बिना नहीं रहते परन्तु हैं वे पुण्यबन्ध का कारण। भगवान की श्रद्धा भी पुण्यबन्ध कारण है, अबन्ध का कारण नहीं। आहा..हा..!

भगवान आत्मा... कल दोपहर को आया था न? कि यह आत्मा, जो आस्रव और बन्धभाव है। आस्रव अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प। बन्ध अर्थात् वहाँ उतना अटका है न? तो वह आस्रव और बन्धभाव से भगवान आत्मा रहित है। क्योंकि आस्रव और बन्धतत्त्व दो भिन्न तत्त्व हैं और आत्मा भिन्न तत्त्व है तथा अजीव कर्म का उदय भी अजीवतत्त्व भिन्न है, तो अजीवतत्त्व कर्म का उदय, वह भिन्न तत्त्व है और पुण्य-पाप के विकल्प होना और अटकना, वह भावबन्ध और आस्रव भिन्न तत्त्व है और उनसे रहित ज्ञायकतत्त्व भिन्न तत्त्व है। ऐसे ज्ञायकतत्त्व का जब भान हुआ तो वह ज्ञायकतत्त्व तो

आस्रव-बन्ध से रहित है। समझ में आया ? आस्रव-बन्ध से रहित है अर्थात् अबन्धस्वरूप है। ऐसे अबन्धस्वरूप की दृष्टि हो, तब सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा.. ! तब बन्ध और आस्रव का उसे ज्ञान होता है कि थोड़ा राग है। परमसत्य परमेश्वर.. आहा..हा.. !

यह कहा न ? कि यहाँ तो यह कहते हैं कि अजीव, आस्रव, बन्ध और जीव। बस, पहले चार लो। क्योंकि संवर, निर्जरा और मोक्ष तो निर्मल पर्याय है। अब यहाँ चार बोल लिये कि कर्म आदि अजीव हैं। समाप्त। तो अजीव, अजीव में रहा, बस और अपने पुण्य-पाप का विकल्प हुआ तो वह आस्रव है। नया आया, अन्दर है नहीं और आस्रव में थोड़ी देर रुका, उस समय इतना रुका न ? उसका नाम भावबन्ध है, तो द्रव्यबन्ध कर्म का, भावबन्ध यह और आस्रव, इतन तीनों से ज्ञायकतत्त्व तो रहित है। ऐसे आत्मा की प्रतीति हो, तब सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा.. ! तब...

दूसरा कहना था कि भावबन्ध और द्रव्यबन्ध। भावबन्ध मलिन पर्याय; द्रव्यबन्ध जड़ की पर्याय, उनसे रहित आत्मा है। सहित हो, तब तो सब एक हो जाये। आहा..हा.. ! समझ में आया ? उनसे रहित है, तो जहाँ रहित है, ऐसा भान हुआ तो उसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा अबन्धस्वरूप है। उसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा बन्धसहित नहीं है, वह तो मुक्त है। आहा..हा.. ! भीखाभाई ! ऐई ! देवानुप्रिया ! आहा..हा.. ! ऐसा मार्ग है, लो ! लॉजिक से बैठे ऐसा है। आहा..हा.. ! इसमें पक्ष और वाद-विवाद को स्थान कहाँ है ? आहा..हा.. !

भगवान ! नवतत्त्व हैं या नहीं ? तो नवतत्त्व में तू ज्ञायकतत्त्व आठ में मिल गया है ? मिल गया हो तो नवतत्त्व रहे कहाँ से ? संवर, निर्जरा, मोक्ष एक ओर रखो और पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध और अजीव, वह तत्त्व है। उनसे यह ज्ञायकतत्त्व तो भिन्न है। भिन्न है, इसका अर्थ कि आत्मा अबन्ध तत्त्व है। अनास्रवी तत्त्व है, उसमें आस्रव है नहीं। वह तो अबन्ध तत्त्व और अनास्रवी तत्त्व है। आहा..हा.. ! ऐसी दृष्टि हो तो संवर, निर्जरा होती है और ऐसी पूर्ण निर्मलता हो तो मोक्ष होता है, यह नवतत्त्व की व्याख्या। आहा..हा.. ! कान्तिभाई ! आहा..हा.. !

मुमुक्षु : जल्दी-जल्दी मोक्ष जाना है न तो जल्दी-जल्दी फरमावे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहा। नवतत्त्व है या नहीं ? तो पहले संवर, निर्जरा, मोक्ष तो अनादि से है नहीं। अब है तो दूसरे चार तत्त्व रहे। अब अजीव, वह तो कर्म है। अजीव है, वह अपने में आता नहीं। उस अजीवरूप आत्मा है नहीं, एक बात। पुण्य-पाप के

विकल्प उठते हैं, वे तो आस्रव हैं। आस्रव, आत्मा में आता नहीं। आस्रवरूप आत्मा होता नहीं क्योंकि वह तो ज्ञायकतत्त्व है। भावबन्ध (अर्थात्) अटकना, थोड़ा रुकना, यह रुकना, वह भावबन्ध है। उस भावबन्ध से तो रहित आत्मा है। रुकना वह स्वभाव में है नहीं।

आस्रव, भावबन्ध और द्रव्यबन्ध। द्रव्यबन्ध अजीव। भावबन्ध जीव की विकारी पर्याय में अटकना; आस्रव जीव की पर्याय नहीं थी और उत्पन्न हुई, उससे तो भगवान रहित है, वरना ज्ञायकतत्त्व सिद्ध कैसे होगा? आहा..हा..! रहित है तो उसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा अनास्रवी और अबन्धस्वरूपी है। ऐसे अनास्रवी और अबन्धस्वरूप की दृष्टि होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। यह तो **जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं** आया न? **जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं** आहा..हा..! आचार्यों की कथनी, दिगम्बर सन्तों की कथनी अलौकिक शैली.. अलौकिक शैली!! ओहो..हो..! केवलज्ञान के पथानुगामी। केवलज्ञान होने का मार्ग कर रखा है। इस मार्ग से जा, तुझे केवलज्ञान होगा। कहाँ? कि भगवान पूर्णानन्द प्रभु है वहाँ।

अशुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से मतिज्ञानादि विभावगुणों का आधार होने के कारण 'अशुद्धजीव' है। यह क्या कहते हैं? कि जिसे कारणशुद्ध जीव त्रिकाली द्रव्य है, उसका भान हुआ, तो उसे कार्य ऐसा हुआ, उसका भान हुआ और अशुद्धता बाकी है, उसका भी श्रुतज्ञान होता है। समझ में आया? **शुद्ध निश्चय से सहजज्ञानादि परमस्वभाव गुणों का आधार होने के कारण 'कारणशुद्ध जीव' है।** अब जीव आया। त्रिकाली भगवान आत्मा ध्रुव। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। उत्पाद-व्यय निकालकर अकेला ध्रुव। ध्रुव कैसा है? वह तो शुद्धनिश्चय हुआ। त्रिकाली कायम रहनेवाला है, इसलिए शुद्ध, पवित्र है; इसलिए शुद्ध और त्रिकाली ऐसा का ऐसा रहता है, इसलिए निश्चय। सहज ज्ञानादि अनन्त स्वभाव। ज्ञान-दर्शन-आनन्द। परमस्वभाव के गुण त्रिकाली। अपने **परमस्वभाव गुणों का आधार होने के कारण 'कारणशुद्ध जीव' है।** उस द्रव्य को कारणशुद्ध जीव कहा जाता है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी धर्म देशना कैसी? हरितकाय नहीं खाना, कन्दमूल नहीं खाना, रात्रिभोजन का त्याग करना, ऐसा त्याग करना, वह तो एक घण्टे में इसमें कहीं आया नहीं! ऐसे तो सब आया। राग भी तेरा नहीं। तेरी दृष्टि में राग छोड़ दे, ऐसा कहना है। पर का ग्रहण-त्याग तो तुझमें है नहीं, वह तो अजीवतत्त्व भिन्न है। उसे छोड़ना-ग्रहण

करना, वह तो तुझमें है नहीं और उसे छोड़ना, ग्रहण करना ऐसा विकल्प आवे, वह भी तेरा नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : पहले से ही छूटा हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छूटा ही है। आहा..हा..! समझ में आया? गजब, भाई! ऐसा मार्ग, यह इसमें है या नहीं? इसमें है, उसका अर्थ होता है। उसमें गन्ध है तो सुगन्ध आती है। आहा..हा..! परमागम। निहालभाई कहते हैं न कि परमागम में ध्यान रखकर पढ़े तो पद-पद में अमृत की बूँद झरती है। एक ओर ऐसा कहते हैं कि भाई! व्यभिचार है और एक ओर (अमृत कहते हैं)। भाई! किस अपेक्षा से है, वह समझना चाहिए न।

मुमुक्षु : स्वरूप में न रह सके, तब उस प्रकार का व्यवहार होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : और उस आत्मा पर उसका लक्ष्य रखकर सब होता है। इसलिए उसमें तो एकाग्रता बढ़ती है, ऐसा कहते हैं। धर्मी को चाहे तो वाँचन, श्रवण, मनन हो परन्तु अन्तरसन्मुख की दृष्टि है, वहाँ एकाग्रता शक्ति बढ़ती है। आहा..हा..! लो, इतनी बात हुई। कारणशुद्ध जीव त्रिकाली द्रव्य है, उसका आश्रय लेता है, अवलम्बन लेता है और ध्यान करता है तो कार्यशुद्ध जीव होता है। उसका दूसरा कोई उपाय है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)